बदलते चेहरों से झांकता समय

❑ महेश दर्पण

चरित्र और चेहरे, ले. आलोक मेहता, प्र. सामयिक बुक्स, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, प्र.सं. 2013, पृ.सं. 320, ₹ 595.00

पत्रकारिता के क्षेत्र में पांच दशक से सक्रिय वरिष्ठ पत्रकार आलोक मेहता के पास पत्रकार जीवन के विविध स्तरीय अनुभव हैं। उनकी मान्यता सही है कि समाज और राष्ट्र के इतिहास की असली झलक पत्रकारिता से मिल सकती है। यह झलक कभी-कभी मूल रूप से इतिहासकारों को भी नहीं मिल पाती, क्योंकि सत्ता के गलियारों में पर्दे के पीछे बहुत कुछ 'ऑफ दि रिकार्ड' होता है। इस नजरिये से स्वातंत्र्योत्तर पत्रकारिता का विशेष महत्व है। स्वयं आलोक मेहता इसी काल खंड के महत्वपूर्ण पत्रकार हैं। हाल में सामयिक बुक्स से प्रकाशित उनकी पुस्तक 'चरित्र और चेहरे' इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। प्रारंभ में ही लेखक ने यह साफ कर दिया है कि "समाज में इस वक्त सबसे बड़ा मुद्दा चरित्र और चेहरों का ही है। हर क्षेत्र और वर्ग में लोगों को असली चेहरे पहचानने की इच्छा है। सामान्यजन पूरी राजनीतिक-सामाजिक व्यवस्था और उससे प्रभावित अर्थव्यवस्था को लेकर बेहद उत्तेजित है। एक मात्र उम्मीद न्याय व्यवस्था और मीडिया से लगाई जाती है।"

इसी प्रक्रिया में जब वह 'चरित्र और चेहरे' की ताकत को चीन्हते हैं तो उनका पत्रकार तटस्थ भाव से अपना विश्लेषण सामने रखता है। वह मानता है कि यह चरित्र व चेहरे की ही ताकत है, जिसने मनमोहन सिंह को भारत का उपयुक्त नेता बनाया। एक तरफ वह लालकृष्ण आडवाणी और सुषमा स्वराज के चरित्रों को बेदाग बताते हैं और दूसरी तरफ नरेन्द्र मोदी को गुजरात में सांप्रदायिक नरसंहार के कलंक का टीका होने के बावजूद भ्रष्टाचार से मुक्त और एक सफल मुख्यमंत्री बताते हैं, लेकिन उन्हीं की पार्टी भाजपा के इस चरित्र को वह संदिग्ध मानते हैं कि भ्रष्टाचार और हत्या जैसे गंभीर आरोपों से घिरे शिबू सोरेन को झारखंड की सत्ता सौंप दी जाए। गौरतलब है कि सन् 2010 में ही प्रकाशित लेख में आलोक मेहता ने यह कहा था कि भाजपा की चाल तथा नीयत पर संभवतः नीतीश कुमार को भी पूरा भरोसा नहीं होगा, क्योंकि भाजपा वर्चस्व चाहती है। उसके लिए अब चरित्र से अधिक महत्व सत्ता का है। कांग्रेस को वह सत्ता और छवि, दोनों की चिंता रखने वाली पार्टी बताते हैं। वर्तमान संदर्भ में इन पूर्वानुमानों को देखना दिलचस्प है।

आजादी के बाद भारत में सबसे खराब रोल अफसरशाही का रहा है। आलोक मेहता समय-समय पर उसे लताड़ने में कोई कसर नहीं छोड़ते। उनकी मान्यता है कि जरूरत परिस्थितियों को सुधारने और जागरूकता लाने की है, क्योंकि इंसान या पशु परिस्थितियों से ही हिंसक बनता है। अपने-अपने समय में सुधार करने वालों को वह पर्याप्त श्रेय देते हैं। उन्हें भारतीय बैंकिंग व्यवस्था में सुधार के लिए श्रीमती गांधी को याद करने की जरूरत महसूस होती है और इस बात की आलोचना की भी, कि हमारे वर्तमान नेताओं

को खुश से प्रेरणा लेने की तमन्ना क्यों रहती है। कोई कह सकता है कि ओबामा के समय में ऐसा क्यों? तो जवाब यह है कि इस पुस्तक में आलोक मेहता के सन् 2008 से सन् 2011 के मध्य प्रकाशित लेख व टिप्पणियां संग्रहीत हैं। लिहाजा इसे इसी कालखंड के मद्देनजर पढ़ा भी जाना चाहिए। हालांकि सुस्त चाल से चलने वाले हमारे देश में बहुतेरे मुद्दे लंबे समय तक बने भी रहते हैं, लेकिन अच्छी बात यह है कि आलोक मेहता का पत्रकार यह बात बाकायदा जानता है कि भारत की ग्रामीण और शहरी अर्थव्यवस्था किसी विदेशी फार्मूले से सुरक्षित नहीं होगी। इसके अपने नियम, कानून और सामाजिक सरोकार रखने होंगे।

समाज के बदलते चेहरे को वह खूब पढ़ते हैं और मध्यवर्गीय परिवारों की स्त्रियों के सही अर्थ में गृहलक्ष्मी बनने पर खुशी जाहिर करते हैं, लेकिन ध्यान यह भी दिलाते हैं कि गणेश-लक्ष्मी को भोग लगाने के साथ कुपोषण के शिकार लाखों बच्चों को याद करते हुए उनके लिए न्यूनतम अन्नदान का संकल्प अधिक सुखकारी है। क्या हम इस दान-व्यवस्था से बाहर नहीं निकल सकते? आखिर क्यों हमारी व्यवस्था उन जरूरतमंदों की तरफ से आंख मूंदे रहती है? यह प्रश्न यहां नजर नहीं आता।

बावजूद इसके, यह कहना जरूरी है कि आलोक मेहता की नजर अपने समय के अनेक जरूरी और गंभीर विषयों व मुद्दों पर बराबर बनी रहती है। अभिशापित वोट व्यवस्था हो या परिवारवाद और पैसे का पाखंड, सत्ता के लिए मृत्यु का इंतजार हो या शहीदों के लिए मात्र पाखंड या असली नमन, वह अपनी बात को पुरजोर तरीके से कहते हैं। वह सूर्य नमस्कार को तरक्की से जोड़ना चाहते हुए प्रश्न उठाते हैं कि सभी राजनीतिक दल यह दबाव क्यों नहीं बनाते कि सौर ऊर्जा बतौर में लाई जाए? ऊर्जा संयंत्रों के माध्यम से देशभर के जीर्ण-शीर्ण गांवों को सस्ती बिजली उपलब्ध क्यों नहीं कराई जाती? भारतीय जन-मानस में तैर रही चिंताओं को वह अपनी तरह से सही करने की कोशिश करते हैं। वह परिवारवाद और पैसे के पाखंड पर कहते हैं–"मुद्दा यह होना चाहिए कि बेटे-बेटी चुनाव लड़े बिना सिंहासन पर बैठाने के योग्य न माने जाएं। उन्हें पांच-दस साल कार्यकर्ताओं और जनता के बीच लगातार रहने को बाध्य किया जाए। इसी तरह पार्टी फंड को पारदर्शी बनाया जाए।" वह धर्म के नाम पर राजनीतिक पाखंड को एक्सपोज करते हुए यह पूछते हैं कि क्यों कोई पार्टी यह कोशिश नहीं करती कि सामान्य यात्री-पर्यटक को न्यूनतम सुविधाएं मुहैया कराए? क्यों यह कोशिश नजर नहीं आती कि धार्मिक पर्यटन-स्थल को प्रदूषण-मुक्त कराया जाए?

वीर जवानों के भविष्य की फिक्र करते हुए गंभीर प्रश्न उठाए गए हैं, जो सीधे देश की सुरक्षा से जुड़े हैं। सेवानिवृत्त सैनिकों-अधिकारियों का कहीं भी गलत इस्तेमाल किया जा सकता है। उन्हें अनिश्चित और अंधकारमय भविष्य के खतरे से बाहर निकालना जरूरी है। इसी तरह सत्ता में महिलाओं की भागीदारी पर तमाम राजनीतिक पार्टियों को वह कोसना चाहते हैं। उन्हें आचरण के महत्त्व को रेखांकित करना अच्छा लगता है, बजाय इसके कि शहीदों को याद करने के नाम पर देश में छुट्टियों या मूर्तियां बनवाने का सिलसिला चलता रहे। आने वाले समय की चुनौतियों को समझते हुए राजनीतिक व्यवस्था को सुधारने की वकालत तो वह करते ही हैं, इस बात पर भी जोर देते हैं कि अमेरिका से मोबाइल के जरिए अंग्रेजी पढ़ाने की व्यवस्था पर गौर करने से ज्यादा जरूरी यह समझना है कि महात्मा गांधी की बुनियादी शिक्षा और साक्षरता अभियान का महत्त्व क्या है। बड़े और चर्चित मुद्दों के साथ ही इस पुस्तक में जब अनायास घरेलू नौकरानियों की चिंता करता आलेख नजर आता है तो खुशी होती है। लेखक यहां उन निरीह लोगों की जीवन-स्थितियों को रेखांकित करते हुए वाजिब सवाल खड़े करता है। राजनीतिक व्यवस्था संभालने वालों को तो वह आत्मनिरीक्षण करते हुए अपने-अपने दलगत ढांचे में लोकतांत्रिक बदलाव की नसीहत देता ही है, इस ओर भी ध्यान दिलाता है कि देशी या विदेशी अतिवाद से हटकर समाज को संतुलित भारतीय माध्यमों से आगे बढ़ाने की जरूरत है। आलोकजी के पत्रकार की अनेक चिंताएं हम सबकी चिंताएं भी हैं। जब वह देश के ढीले अफसरों और नेताओं पर स्विस बैंकों में जमा पैसे के प्रकरण पर कोई कारगर कदम न उठाने का आरोप लगाते हैं, तब भी, और तब भी, जब दिखाने के लिए हवाला कारोबार पर रोक लगाने की बात करते हैं। वह बाजार द्वारा खड़े किए गए 'युवाओं का समय' मुहावरे की कलई भी यह कहते हुए खोल देते हैं कि राजनीति के आकाश पर चमकने वाले सितारे क्या सचमुच काबिल और समाजसेवी हैं? इस मामले में वह नाम सहित उदाहरण देने से भी नहीं झिझकते। यही नहीं, वह निकट अतीत की राजनीति में सक्रिय युवाओं से उनकी तुलना का स्पेस भी बनाते हैं।

अमेरिका और यूरोप का आंख बंद कर पिछलग्गू बने रहना भी लेखक को पसंद नहीं। वह साफ संकेत करता है कि जब अमेरिका व यूरोपीय देश अपनी विफल शिक्षा तथा अर्थ नीतियों पर पुनर्विचार कर रहे हैं तो हम क्यों उनकी पिटी-पिटाई नीतियों का अनुसरण करना चाहते हैं? वह कर्ज के रास्ते को 'आत्मनिर्भरता के विपरीत मानते हैं, तो यह ठीक भी है। उनका सुझाव है कि आर्थिक स्वराज का सपना दिल्ली से सुदूर क्षेत्रों तक समन्वित प्रयासों के जरिये ही पूरा होगा। इसके लिए वह प्रशासन तंत्र और विभिन्न एजेंसियों व समाज सेवा में लगी गैरसरकारी संस्थाओं

के साथ मिलकर काम करने की नसीहत देते हैं, लेकिन यहां गैर सरकारी संस्थाएं खुद कितनी दूध की धुली है, इस ओर कोई टीप नजर नहीं आती। यह वह ठीक कहते हैं कि जन-सहभागिता से ही विकास की असल तस्वीर बन पाएगी। इससे भी पहले लेखक का सपना यह है कि कोई भूखा न रहे।

स्वातंत्र्योत्तर भारत में पदाधिकारियों, विधायकों, सांसदों की तेजी से बनती आर्थिक हैसियत पर उनका सवालिया निशान लगाना वाजिब है। देश में सांप्रदायिक आधार पर चल रहे संगठनों की चाल का तो अहसास लेखक को है ही, वह परिवारवाद की मजबूरियों पर भी खुलकर बात करते हुए बताते हैं कि असल संकट विश्वसनीयता का है। ऐसे में जनता जागरूक हो तो परिस्थितियां स्वयं ठीक हो जाएंगी, लेकिन इससे भी ज्यादा जरूरी है अपने देश की विशिष्ट संपदा को दूसरों के हाथों में जाने से रोकना। बहुराष्ट्रीय कंपनियां जिस तरह हमारी औषधियों को हथियाने की होड़ में हैं, वह दिन दूर नहीं जब हमें अपनी ही वनस्पतियों से बनी औषधि आयात करनी पड़ जाएगी। यहां लेखक की कोशिश है कि वह एक सोते हुए देश को जगाने के साथ ही उसके विवेक को भी खरोंचे।

आलोक मेहता को इंदिरा गांधी में एक बड़ा नेता नजर आता है, तो वह इसके कारण भी बताते हैं। शताब्दी में सबसे साहसी नेता के तौर पर रेखांकित करते हुए इंदिरा गांधी को वह स्मरणीय बनाते हुए आज के नेताओं की आलोचना यह कहकर करते हैं कि वे खतरों से खेलना नहीं चाहते।

भारतीय आम-जन में किसान की दयनीय स्थिति पर वह न सिर्फ चिंता करते हैं, बल्कि हर ओर से उनके ठगे जाने पर राजनीतिक प्रदूषण की निंदा भी करते हैं। उनका सुझाव है कि किसानों की बुनियादी जरूरतों की तरफ ध्यान देना जरूरी है। उन्हें भारतीयों के बीच विकास की असमान गति और उनके बीच असंवाद की स्थिति भी प्रगति विरोधी लगती है, तो यह ठीक ही है। मंचियों पर अफसरी नकेल ही नहीं, उनके बीच चल रहे गठजोड़ को भी आलोक मेहता ने खतरनाक बताया है।

समय के साथ-साथ हो रहे तकनीकी बदलावों के चलते इधर लेखन में ब्लॉग राइटर्स की दुनिया पर अपनी खिलंदड़ी टिप्पणी में आलोक पूरे मूड में नजर आते हैं। समाज की कथित दुर्बुद्धि जमात के इस कचरे पर अधिकांशतः उनकी बात सही है। उन्होंने तो खैर होली के मौके का इस्तेमाल किया है, लेकिन सच यह है कि हमारे यहां स्वच्छ ब्लॉग कल्चर अभी धीरे-धीरे आकार लेगी। धैर्य इसके लिए अपेक्षित है। कागज पर लिखने वालों से एकदम अलग है इस जमात के लोग। जो दोनों पर लिखते हैं, वे अलग ही नजर आते हैं।

देश के भीतर चल रही कोई बहस हो या संसद में गर्म कोई बड़ा मुद्दा, लेखक ने बड़े और गंभीर स्तर पर इन पर चर्चा की है। महिला आरक्षण विधेयक का मामला उनकी दृष्टि में कांटो भरा रास्ता है तो वह यह भी बताते हैं कि प्रायः हर राजनीतिक दल इससे घबरा क्यों रहा है। वह लोकतंत्र में देश के सही दिशा में न बढ़ने पर अपनी चिंता जाहिर करते हैं तो यह भी बताते हैं कि कैसे कई देशों में इसी व्यवस्था के चलते आर्थिक उन्नयन हुआ है। व्यवस्था का लाभ देश के हर हिस्से और पिछड़े तबके तक न पहुंच पाने पर उनका विरोध और आक्रोश भी वाजिब है।

क्रिकेट के खेल का जाल कहां-कहां तक मछलियां फंसाता है, यह हमारे देश में बाकी खेलों और खिलाड़ियों की स्थिति को देखकर ही समझा जा सकता है। लेखक की मान्यता है कि खेल के दिल-दिमाग से मुनाफे का भूत उतरना चाहिए। तभी गौरवशाली खिलाड़ी तैयार हो सकेंगे। लेखक ने कमजोर होते राष्ट्रीय जांच-तंत्र, आईपीएल से देश को खुशहाल बनाने की गलतफहमी, योग्यता की बेकद्री, स्वायत्तता के दुरुपयोग, राजनीतिक पाखंड की तस्वीर और मुद्दों का साइड हो जाना ही नहीं, निहित स्वार्थों में घिरे नेताओं के दागदार चेहरे और योजनाओं के अधिक पारदर्शी होने की वकालत भी की है।

यह समय अमेरिकापरस्ती का है। इसमें भारतीय नागरिक के अधिकारों की चिंता किसी को नहीं है। आलोक मेहता के लिए यह गंभीर चिंता का विषय है। इसीलिए वह जन्म के साथ जुड़ी पहचान और अधिकार की बात की विस्तार से चर्चा करते हैं। उन्हें जे.आर.डी. टाटा की 'देश को महाशक्ति के बजाय एक खुशहाल देश बनते देखने की ख्वाहिश' ज्यादा प्रभावित करती है। आज देश की खुशहाली जहां खोजी जा रही है, उससे यह मान्यता एकदम अलग है, क्योंकि किसान, मजदूर और निचला तबका तो हैरान-परेशान ही है।

अच्छी बात है कि इस पुस्तक में देश के सामने खड़ी तमाम तरह की चुनौतियों पर तो चर्चा है ही, भ्रष्टाचार से अनेक स्तरों पर लड़ने के सुझाव भी हैं। वह एक तरफ चुनावी राजकीय कोष के प्रावधान की संस्तुति करते हैं और दूसरी तरफ सत्ता के दरबार में ही अंकुश जरूरी बताते हैं और इंदिरा युग सरीखे साहसी निर्णयों के न हो पाने पर अफसोस जाहिर करते हैं। उन्हें दिशाहीनता और निरंकुश व्यवस्था चिंताजनक लगती है। उन्हें बेहतर होती महिलाओं की स्थिति पर संतोष है तो इस बात की फिक्र भी है कि वरिष्ठ अधिकारियों और मंत्रियों की मिलीभगत से सार्वजनिक क्षेत्रों की कंपनियों की हालत खराब हुई जा रही है।

पत्रकारिता में प्रायः तात्कालिक स्थितियों पर लिखते हुए कतिपय विशेष परिवर्तनों को पत्रकार अधिक आशावादी नजरिये से देखने लगता है। ऐसे में उसकी आकांक्षाएं तो स्पष्ट होती हैं, लेकिन

भविष्यवाणियां भी सही साबित हों, ये जरूरी नहीं। पश्चिम बंगाल में ममता बनर्जी की जीत पर की गई टिप्पणी इसी तरह की है। लेखक जिस तुर्शी से वहां कम्युनिस्टों के पतन में लोकतांत्रिक रास्तों के बनने की उम्मीद करता दीखता है, उससे लगता है कि कम्युनिस्ट ही देश में लोकतंत्र की राह में रोड़ा बने हुए हैं। यह जरूर है कि सलाह वह कांग्रेस को भी देता नजर आता है कि अगर सन् 2014 का चुनाव जीतना है तो उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड, हरियाणा, पंजाब और पूर्वोत्तर राज्यों में नए सिरे से विश्वास अर्जित करना होगा, लेकिन यहां छोटे दलों और क्षेत्रीय हित की बात पीछे छूटती लगती है।

राजनीति के 'सेवा' से 'प्रोफेशन' में बदल जाने पर एतराज नहीं है, लेखक को, लेकिन उसकी यह मांग जायज है कि इसके लिए न्यूनतम शिक्षा-दीक्षा और प्रशिक्षण जरूरी है। वह युवाओं के राजनीति में प्रवेश को एक पॉजिटिव संकेत मानते हैं, लेकिन बुजुर्गों से अपेक्षा रखते हैं कि वे सलाहकार रहकर संतोष करें। विकास के मॉडल पर भी आलोक मेहता अपनी तरह से तकनीकी प्रश्न चिह्न खड़े करते हैं। उनका यह कहना एकदम सही है कि पंजाब, महाराष्ट्र, असम, उड़ीसा जैसे राज्यों में अब भी लाखों लोग अशिक्षित और इंटरनेट का उपयोग करने में असमर्थ हैं। इसलिए इन राज्यों की 50 हजार ग्राम पंचायतों की आय और खर्च का ब्योरा इंटरनेट पर उपलब्ध कराने का दावा बेमानी है। कई क्षेत्रों पर उनका आकलन व्यावहारिक दृष्टि से समीचीन है। जैसे सरकारी कुप्रबंध और राजनीतिक हस्तक्षेप के चलते भ्रष्टाचार की छाया में एयर इंडिया और प्रसार भारती जैसी संस्थाओं की हालत खस्ता हुई है। तमाम किंतु-परंतु के बावजूद वह गुजरात को एक आदर्श मॉडल बताते हैं, तो उसके आंखों देखे तर्क भी प्रस्तुत करते हैं। उनकी यह टिप्पणी गौरतलब है कि राजनीतिक दलों की साख गिरने के बाद यदि देश का भविष्य सिविल सोसाइटी और गैरसरकारी स्वयंसेवी संगठनों, समाजसेवियों, संत-महात्माओं और उनके आश्रमों से तय होना है तो उनके काम-काज और हिसाब-किताब को पूरी ईमानदारी तथा पारदर्शिता से बनाने पर ऐतराज नहीं होना चाहिए। उनका विश्वास है कि भारत में भी अनुकूल वातावरण तथा जागरूक होने पर युवा सामाजिक तथा ग्रामीण उत्थान में गैरसरकारी स्तर पर महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। वह समाज के हर वर्ग को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर देखना चाहते हैं। उनकी यह मांग दुरुस्त है कि पिछड़े और आदिवासी इलाकों में सूरत बदलनी है तो सरकार को पहले वहां न्यूनतम सुविधाएं मुहैया करनी चाहिए। सबसे पहले वहां रहने वालों को सुरक्षा की गारंटी जरूरी है। वह नहीं चाहते कि पुलिस व परमिट राज की वापसी हो। सोनिया के नेतृत्व वाली राष्ट्रीय सलाहकार परिषद की सदस्य अरुणा राय के चरित्र को लेखक ने सही परखा है। ऐसा न होता तो वे इससे इस्तीफा न दे देतीं। उन्हें अगर दूसरे देशों के मुकाबले सीबीआई का ढांचा दयनीय लगता है, तो यह सही भी है। लेखक देश के भीतर ही नहीं, अंतरराष्ट्रीय स्तर की संस्थाओं के ढांचे में भी सुधार की बात करता है। उसे भारत द्वारा संयुक्त राष्ट्र में व्यापक सुधार का अभियान चलाने की खुशी है तो अमरिका और चीन की चालाकी का अहसास भी।

कुल मिलाकर यह पुस्तक जहां हमारे समय की जरूरी चिंताओं से जोड़ती है, वहीं चरित्र और चेहरों को पहचानने की सलाहियत भी देती है। इन चेहरों के बीच वह मीडिया के चेहरे को भी दुरुस्त बने रहने की जरूरत पर बल देते हैं। मीडिया द्वारा खुद को चमकाने के लिए कुछ भी करने को तैयार रहना उन्हें नहीं रुचता। भारत जैसे देश में, जहां नागरिकों को देश की फिक्र चुनाव से कुछ ही रोज पहले सताती है, ऐसी किताबें नागरिक-विवेक को सतत जगाए रखने का काम करती हैं।

सी-3/51, सादतपुर, दिल्ली-110094

आवश्यक सूचना

समीक्षकों से अनुरोध है कि समीक्षा भेजते समय समीक्षित पुस्तक की विस्तृत सूचना फुटनोट में जरूर दें :

यथा : पुस्तक का नाम, लेखक का नाम, प्रकाशक का नाम, पता, संस्करण, पृ. संख्या, मूल्य, इत्यादि।

संपादक